भक्तिकालीन संत
और
उनका काव्य वैशिष्ट्य

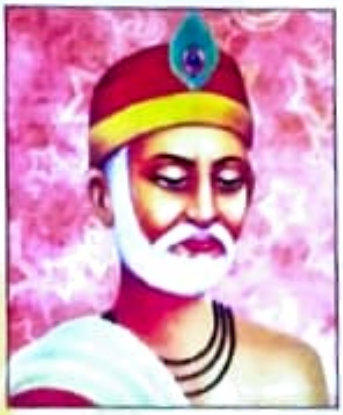

सम्पादक

डॉ. शाहिद हुसैन

डॉ. श्रद्धा हिरकने

ISBN : 978-93-91515-43-0

© : सम्पादक

प्रकाशक : मनीष पब्लिकेशन्स
471/10, ए-ब्लॉक, पार्ट-द्वितीय,
सोनिया विहार, दिल्ली-110090
मो. नं. 09968762953
email : manishpublications@gmail.com

प्रथम संस्करण : 2022

मूल्य : ₹ 550/-

शब्द संयोजक : मुस्कान कम्प्यूटर्स, दिल्ली

आवरण : अमित

मुद्रक : पूजा ऑफसेट, जगतपुरी, दिल्ली-110093

Bhaktikaleen Sant Aur Unka Kavya-Vaisitheya
Edited Dr. Shahid Hussain and Dr. Shraddha Hirkane

11.	गुरु नानक जी का जीवन दर्शन और शिक्षाएँ **डॉ. श्रद्धा हिरकने** **स्मृति उरांव**	84
12.	गुरुनानक देव का व्यक्तित्व एवं चिंतन : एक ऐतिहासिक अनुशीलन **डॉ. अंजू तिवारी**	91
13.	अगुणहि सगुणहि नहि कछु भेदा **डॉ. शुभा बाजपेयी**	95
14.	निर्गुण संत कबीर का दृष्टिकोण (सामाजिक परिवर्तन के विशेष परिप्रेक्ष्य में) **डॉ. मंजू साहू**	101
15.	दक्षिण भारत की संत महिला 'आण्डाल' **डॉ. शीबा शरत. एस**	107
16.	संत रविदास दर्शन **डॉ. शाहिद हुसैन** **डॉ. श्रद्धा हिरकने**	110
17.	संत रैदास **वासरथी जांगड़े**	116
18.	भक्तिकाल की महान विदुषी मीराबाई **रंजिता प्रधान**	124
19.	भक्तिकालीन कवि तुलसीदास **श्रीमती आभा गुप्ता**	130
20.	सुन्दरदास : संत साहित्य में पांडित्य एवं विद्वता की प्रतिमूर्ति **डॉ. मंजु रामचंद्रन**	137
21.	तुलसी दर्शन **डॉ. कमल बाई**	142
22.	भक्ति काल के सन्त कवि-सन्त सुन्दरदास **कविता**	150
23.	भक्ति आंदोलन में महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव का योगदान **किरण कलिता**	156
24.	संत साहित्य पर आचार्य रजनीश (ओशो) की अभिनव दृष्टि **डॉ. शाहिद हुसैन**	161

निर्गुण संत कबीर का दृष्टिकोण
(सामाजिक परिवर्तन के विशेष परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. मंजू साहू
सहा. प्राध्यापक
डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय,
कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

संत सम्प्रदाय का ब्रम्ह निराकार और निर्विकार है। वह समस्त विश्व में व्याप्त है। वह शून्य, निरंजन तथा घट-घट का वासी है। वह वर्णनातीत, अगम्य एवं अकल्पनीय है। वह एक है और हिन्दू-मुसलमानों, ब्राह्मण व शूद्र सबके लिए समान है। उसकी प्राप्ति प्रेमानुभूति तथा सहज-समाधि से संभव है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गुरु का होना आवश्यक है। संत कवियों ने जातिवाद, मूर्ति पूजा, तीर्थ, तिलक, माला आदि का खण्डन किया, इससे श्री विचार को समर्थन मिला। इस्लाम धर्म में एकेश्वरवाद, सामाजिक समता और मूर्ति पूजा तथा बाह्यचारों के खण्डन को लोगों ने मुस्लिम प्रभावित समझा।

प्रस्तावना - निराशा एवं हतोत्साह के व्याप्त वातावरण में क्रांतिकारी व निर्गुण संत कबीर का जन्म सन् 1455 ई. में एक विधवा ब्राम्हणी के गर्भ से हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि उनकी माता ने वाराणसी के लहरतारा के पास एक तालाब के निकट छोड़ दिया था। इसके पश्चात् जुलाहा नूरी एवं उसकी पत्नी ने इस शिशु को संरक्षण प्रदान करते हुए, अपने घर में पनाह दी। इस बालक का नाम "कबीर" रख गया। यह वाक्य अरबी भाषा से लिया गया है, जिसका तात्पर्य "महान" होता है। जनश्रुति के अनुसार जब उनके नामकरण के लिए किताब खोली गयी, तो सर्वप्रथम कबीर शब्द सामने दिखाई दिया, तत्पश्चात् उस बालक का नाम कबीर रख दिया गया। इस प्रकार कबीर का प्रारंभिक जीवन एक मुस्लिम परिवार में व्यतीत हुआ। ये रामानन्द के शिष्य थे और गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर हरि 'जन में लगे

रहते थे।[1] इनकी पत्नि का नाम लोई था। इनके दो संतान उत्पन्न हुए, एक पुत्र एवं एक पुत्री जिनका नाम क्रमशः कमाल तथा कमाली था। कबीर ने जो कुछ पाया वह उनके जीवन का गहरा अनुभव था। मुस्लिम परिवार में जन्म लेकर वाराणसी के वातावरण में हिन्दू धर्म, दर्शन तथा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला। एक हिन्दू संत गोसाई अष्टानंद से उन्होंने बहुत कुछ सीखा।[2] एक सच्चे गुरु के तलाश में वे भ्रमण पर निकले। इलाहाबाद के पास संत शेख तकी से भेंट करके उनसे भी दीक्षा ली।

कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण

कबीर का जन्म तथा पालन-पोषण इस तरह की परिस्थितियों में हुआ कि वे हिन्दू-मुस्लिम सामाजिक एकता और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण के निर्माण में उपयोगी हो सकते थे। कबीर उस समय सुधार के लिए समाज के सम्मुख उपस्थित हुए, जब मुस्लिम शासन स्थायित्व प्राप्त कर चुका था। इन परिस्थितियों में हिन्दू मुसलमान को सामाजिक रंगमंच पर लाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। कबीर के समाज सुधार का एकमात्र उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम समाज के रूढ़िवादी तत्वों के खिलाफ हिन्दू-मुस्लिम एक आंदोलन प्रारंभ करना था, जो सामाजिक एकता में बाधक तत्व थे। इसलिए कबीर ने कट्टरपंथी हिन्दू तथा मुसलमानों की कटु आलोचना की। उन्होंने एक ऐसे मध्यम वर्गीय साधना की व्यवस्था की जिसे दोनों वर्ग हिन्दू-मुसलमान ग्रहण कर सकते थे। उनके समाज में राम और खुदा का स्वरूप अभिन्न था। कबीर की दृष्टिकोण में काबा तथा काशी भी समान था।[3]

कबीर ने व्यक्ति के लिए धन को एक अनिवार्य तत्व माना तथा आवश्यकता के अनुकूल अर्जित करके उसके उपभोग का संदेश दिया।[4] धन को आवष्कता से अधिक संचय करने को पाप एवं लोक हितार्थ धनोपार्जन को श्रेष्ठ ठहराया। अमीर व गरीब में कोई भेदभाव नहीं किया। इन्होंने साम्प्रदायिकता का मूल हिन्दुओं के मंदिर और मुसलमानों के मस्जिद में देखा। उन्होंने इन दोनों को समाप्त कर ईश्वर भजन की एक विधि बतायी एवं मंदिर व मस्जिद की खुले आम निंदा की।

कबीर ने बाह्यचार का खण्डन किया। इससे भेद-विभेद की खाई उत्पन्न हो जाती है, समाज में कलह, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या का बोलबाला हो जाता है। कबीर ने सती प्रथा, पर्दा प्रथा की खुली आलोचना की और हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा लगाया।[5] विषम परिस्थितियों में अवतरित यह महापुरूष हमेशा अविस्मरणीय रहेगा। समाज में व्याप्त कुरीतियों और कुप्रथाओं का उन्होंने डटकर विरोध किया था। समाज को उसकी बुराईयों का आइना दिखाकर उससे छुटकारा पाने का उनका सद्परामर्श तत्कालीन समाज को स्वच्छ बनाने में सहायक सिद्ध हुआ। बाहयाचार मूलक

अंध विश्वासों, दकियानूसी एवं अमानवीय मान्यताओं और सड़ी गली रूढ़ियों की कटु आलोचना करके उन्होंने जीवन को सात्विक बनाने का परामर्श दिया। उन्होंने समाज की धार्मिक दृष्टि का परिशोधन कर सहिष्णुता की भावना को पुनर्जीवित किया। समाज, धर्म और दर्शन क्षेत्र में की गई उनकी कृतियां मूल्यवान एवं अविस्मरणीय है। विषम परिस्थितियों में कबीर का जन्म हिन्दू मुसलमानों की समान रूप से आलोचना करने में समर्थ बनाया था। उनकी भिक्त पद्धति ने इस्लाम की प्रचंड आंधी में उखड़ने वाले हिन्दू धर्म को पैर जमाने की शक्ति सामर्थ्य प्रदान की। उन्होंने साम्प्रदायिकता के उस विषधर सर्प के एक-एक फन को खींच कर उसे शक्तिहीन कर दिया। इन्होंने घूम-घूम कर यही उपदेश दिया कि हिन्दुओं के राम और मुसलमानों के खुदा सब एक ही परम तत्व के भिन्न-भिन्न नाम है। ' उनकी शिष्य परम्परा में क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी दीक्षित होने लगे और उनके शिष्यों ने कबीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का मुक्त कंठ से प्रचार किया। कबीर ने युग-युग से प्रताड़ित पीड़ित समाज के निम्न वर्ग को अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा ऊपर उठाया और उनमें आत्म सम्मान जगा कर एक नई आशा और विश्वास का संचार किया।

समाज में फैली हुई तमाम श्यानक स्थितियों पर प्रहार करने में वे अन्य कवियो में पहले कवि है जो आम जनता से जुड़कर रचनाएं करते है। इन दृष्टियों के चलते प्रकाश चन्द्र गुप्त ने कबीर को जनता का कवि घोषित करते हुए लिखा है - " जीवन पर्यन्त अपनी अटपटी सधुक्कड़ी भाषा में कबीर उत्तर भारत की जनता को सीख देते रहे। सुकरात के समान वे कड़वी बातें कहते थे। उनके विरोधी हृदय का स्वर तत्कालीन शासन व्यवस्था पर आघात करता था। " कबीर की विद्रोही वाणी में चुटीली प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती है। यह आम आदमी की शपा समाज की सड़ी गली मान्यताओं पर आक्रमण करते हैं। समाज की यह व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में यहां कबीर की दृष्टि तुलसीदास से एकदम भिन्न थी। वे परम्परागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्या प्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति-रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। वे सभी धर्मों की मूलभूत एकता को स्वीकार करते हुए धर्म के नाम पर होने वाले पारस्परिक विरोध की तीव्र आलोचना करते हैं। इस प्रकार वे मूर्ति-पूजा, व्रत उपासना, तीर्थाटन, राजा, जीव हिंसा आदि तत्वों के भी विरोधी थे। धर्म के समान तत्वों-सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, संयम, सदाचार का उन्होंने, पूर्ण समर्थन करते हुए एक व्यापक धर्म की प्रतिष्ठा की है, जिसे सभी मनुष्य सामान्य ढंग से अपना सके। उनकी तीव्र दृष्टि ने सत्य और असत्य को स्पष्ट रूप से पहचानते हुए सभी क्षेत्रों में 'सार' तत्वों को ग्रहण कर लिया और निस्सार का बहिष्कार कर दिया।

कबीर की भक्ति भावना

कबीरदास की भक्ति की कुछ ऐसी थी कि उसे प्रचलित किसी पारिभाषिक शब्दावली से पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता।[9] कबीर ने भक्ति मार्ग को कर्म तथा ज्ञान मार्ग से श्रेष्ठ बताते हुए कहा है कि जब तक आराध्य के प्रति भक्ति भाव नहीं है, तब तक जप, तप, संयम स्नान, ध्यान आदि सब व्यर्थ है।

'झूठा जप तप झूठा ज्ञान, राम नाम बिन झूठा ध्यान'

कबीर की भक्ति एक प्रकार की विचित्र शिक्त थी। इन्होंने ने ज्ञान और धर्म को एक दूसरे से अन्योन्याश्रित माना है। कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे इसलिए उन्हें ज्ञान मार्ग संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उन्होंने सगुणवाद, अवतारवाद और मूर्तिपूजा आदि को सर्वथा त्याज्य बताया तथा मात्र निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता को स्वीकार किया। निर्गुण और सगुण ब्रह्म के इस भेद को तथा अपने औचित्य को प्रतिपादित करने के लिए कबीर को तर्क व बुद्धि का सहारा लेना पड़ा। उन्होंने ज्ञान को इस सत्य की प्राप्ति के लिए उपयोगी माना। कबीर की शिक्त साधना में गृह त्यागकर सन्यास लेना तथा भिन्न-भिन्न वेष बनाना व्यर्थ माना गया है।

कबीर के दर्शन

इन्होंने परम ब्रह्म को मूल तत्व की संज्ञा दी है। जगत वस्तुतः मिथ्या है। माया से परिपूर्ण है, माया के आवरण हट जाने पर जगत् का वास्तविकता स्वरूप मानव को ज्ञात हो जाता है कि यह मात्र भ्रम है तथा वह आवागमन के मायामोह के बंधन में बंध जायेगा। मानव तन जिस तत्व से चलायमान है, वह आत्मा है। कबीर लोगों को बार-बार आगाह करते हैं कि भ्रम में ना भूलों। उस परमात्मा के स्वरूप को पहचानों जो प्रत्येक जीव में व्याप्त है और जिसमें समस्त सृष्टि व्याप्त है। सृष्टि के जीवन मिट्टी के बने बर्तन की तरह बाह्य आकार में भिन्न है, किन्तु उनका निर्माण एक ही मिट्टी के तत्व से हुआ है। बाह्य भेद के भीतर यह अंतरंग एकता सबमें मौजूद है। इसी प्रकार इस सृष्टि की भी सत्ता है। सबके अंतरंग में ब्रह्म की व्याप्ति है।[10]

कबीर के स्वभाव में विद्रोह की भावना जन्मजात थी। तीर्थ, मंदिर, मस्जिद, मूर्ति, वस्तु अथवा व्यक्ति में ब्रह्म का देखना कितना बड़ा अज्ञान है, कबीर उसे अपने मार्मिक और व्यंग्यात्मक ढंग से बतलाने हैं। उनके तर्क इतने तीखे व प्रभावशाली है कि विरोधी को निरूत्तर हो जाने के अलावा दूसरा रास्ता ही नहीं है। कबीरदास का तो बहुत ही स्पष्ट तथा ग्राह्य मत है कि वह ब्रह्म तो प्रत्येक नर-नारी के हृदय में व्याप्त है। प्रत्येक जीवधारी उसी के 'नूर' से चेतन व प्राणशील है। कबीर के राम वास्तव में न केवल निर्गुण की सीमा में है और न सगुण की। इन्होंने कबीर यद्यपि

'निर्गुण राम' का प्रयोग किया है। क्योंकि इससे सगुण न होने का आभास मिलता है। किन्तु निर्गुण कहने मात्र से ही उस सत्ता का बोध नहीं हो सकता, यह कुछ ऐसा प्रतीत होता है। यद्यपि कबीर निर्गुण राम के उपासक थे, किन्तु पूर्व के सगुण भक्तों की प्रशंसा इन्होंने अनेक स्थानों पर की है। जयदेव, नामदेव, अंबरीश आदि की भिक्त भावना व उनके आदर्श से कबीर दास को अवश्य प्रेरणा मिली रही होगी। इस संत ने हालांकि सगुण ईश्वर का गुणगान किया है, परंतु मूलरूप में हृदय की भावना को ही कबीर ने महत्त्व दिया है। कबीर के समस्त प्रकार के कथन एवं निवेदन में निर्गुण राम के साथ तादात्म्य की शवना है।

उपसंहार

मध्यकाल के समाज सुधारकों में कबीर का स्थान सबसे आगे है। इतिहास में उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व अप्रतिम है। वे अपने समय के सर्वाधिक प्रखर कटु उपदेशक और स्पष्ट वक्ता थे। वे मात्र भक्त ही नहीं, अपितु भविष्यद्रष्टा, समाज धर्म सुधारक, महात्मा, एक महान उच्च गुणों से संपन्न महा-मानव भी थे। कुछ आलाचकों के अनुसार कबीर ने हिन्दू-मुसलमान धर्म के ठेकेदारों की आलोचना में शब्दावली के सभी कटु शब्दों का प्रयोग किया। परिणामस्वरूप दोनों सम्प्रदायों में वे किसी के प्रिय न बन सके तथा अपने विचारों के प्रचार में उनका सहयोग और सहानुभूति न प्राप्त हो सकी। उनकी शिक्षा-दीक्षा किसी के लिए भी ग्राह्य नहीं थी। हिन्दू उन्हें मुसलमान के रूप में घृणा करता था एवं मुसलमान उन्हें हिन्दू के रूप में देखकर उनके उपदेशों का उपहास करता था। इस प्रकार कबीर को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता न मिल सकी। परंतु कबीर का व्यक्तित्व पूरे भारतीय इतिहास में बेजोड़ है। कबीर के जैसे व्यक्तित्व का धनी भारतीय इतिहास के मध्यकाल में तुलसीदास के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। ये हिन्दुओं के लिए वैष्णव भक्त, मुसलमानों के लिए पीर पैगम्बर, सिखों के लिए भक्त कबीर एवं कबीर पंथियों के लिए गुरु की पदवी रखते थे। कबीर का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के गुणों से ओत-प्रोत है। मध्ययुगीन समाज के समक्ष ईश्वर, धर्म, नैतिकता, त्याग, सेवा, प्रेम, भ्रातृत्व भाव और मानवता की साझेदारी को प्रमुखता देकर जनता को नेक राह पर चलने की प्रेरणा दी। कबीर ने भारतीय इतिहास के समाज को पूर्णरूपेण नया और मौलिक चिंतन दिया। अन्य संतों की भांति कबीर का प्रामाणिक जीवन भी उपलब्ध नहीं है क्योंकि व्यक्ति की भावना को छोड़कर समूह के जीवन को सुखमय बनाने के लिए हर समय तत्पर रहते थे।

संदर्भ

1. छाबड़ा, गोविन्द लाल, क्रांतिकारी कबीर, एन. डी. पृष्ठ 30।
2. गुप्त, गणपति चन्द्र, कबीर का व्यक्तित्व, पृष्ठ 154.155।
3. मुहम्मद, मलिक, वैष्णव श्क्ति आंदोलन का अध्ययन, पृष्ठ 123।
4. ग्रंथावली, कबीर, पृष्ठ 54.7।
5. ग्रंथावली, कबीर, पृष्ठ 54.10।
6. रशीद, ए. सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1969, पृष्ठ 248।
7. छाबड़ा, गोविन्द लाल, क्रांतिकारी कबीर, एन. डी. पृष्ठ 61।
8. चौहान, सिंह, पिवदान, कबीर एक विश्लेषण, पृष्ठ 28।
9. सिंह, मोती, कबीर साहित्य की परख, पृष्ठ 77।
10. ग्रंथावली, कबीर, पृष्ठ 104।